शान्ति मन्दिर द्वारा प्रकाशित यह ई-पत्रिका आप सबको समर्पित है ।

सिद्ध मार्ग

© Shanti Mandir अक्टूबर २०१६, संस्करण १९

जब भगवान् का नाम लेते हैं, चिन्तन करते हैं,स्मरण करते हैं तो एक अलग प्रकार की सुख-शान्ति का अपने अन्दर अनुभव करते हैं ।

प्रिय आत्मन्, सप्रेम जय गुरुदेव ! सिद्ध मार्ग ई-पत्रिका का उन्नीसवाँ अंक प्रस्तुत है । इस अंक में महामण्डलेश्वर स्वामी नित्यानन्द जी द्वारा कुछ समय पूर्व मगोद में दिये गये प्रवचन के सम्पादित अंश प्रस्तुत है ।

श्रीगुरुदेव का प्रवचन

मैं कौन हूँ ये जानने का प्रयास करते हैं । भगवान् कहते हैं 'मय्यासक्त मनः पार्थ'' अर्थात् आसक्ति करनी है तो मुझसे कर । शायद हम सब अनुभव करते हैं कि जब भगवान् का नाम लेते हैं, चिन्तन करते हैं,स्मरण करते हैं तो एक अलग प्रकार की सुख-शान्ति का अपने अन्दर अनुभव करते हैं । इसके लिए हमारा मन पूर्णरूप से भगवान् के लिए समर्पित हो । अगर हम महामण्डलेश्वर स्वामी महेश्वरानन्द जी की व्याख्या पर दृष्टि डालें तो उसमे भी स्वामी जी भगवान् के बताये मार्ग का समर्थन करना चाहते हैं कि अगर हम जुड़ें तो भगवान् से जुड़ें । "अनित्यं सुखं लोकम् इमं प्राप्य भजस्व माम्" गीता के नौंवे अध्याय के इस श्लोक में भगवान् कहते हैं कि ये सारा संसार

हम सबको अपने आपसे एक प्रश्न करना चाहिए कि क्या मैं अच्छे कर्म कर रहा हूँ जिससे किसी अन्य को हानि न हो ।

अनित्य है, सुख नहीं देने वाला है तो प्राप्ति परमात्मा की करो उसी में पूर्णसुख है । हम सब जानते हुए भी इस संसार में फँस जाते हैं, अपने लिए सामान बटोरने के लिए अपना कीमती समय बर्बाद कर देते हैं, इसके बाद भी हम अपने साथ कुछ नहीं ले जा सकते हैं । जिससे हमें अच्छा फल मिले वो कर्म करने चाहिए ऐसा जानते हुए भी हम सत्कर्म करने में पीछे रहते हैं । हम सबको अपने आपसे एक प्रश्न करना चाहिए कि क्या मैं अच्छे कर्म कर रहा हूँ जिससे किसी अन्य को हानि न हो । हर व्यक्ति अपने भले के लिए झूठ बोलता है और कहता है कि थोड़ा ही बोला । अब झूठ में भी थोड़ा सा झूठ क्या होता है ? हम लोग कर्म करते हुए ये विचार नहीं करते हैं कि क्या गलत या क्या सही है ? जब बाद में उसी कर्म का प्रतिफल आता है जिसकी हमें जैसी अपेक्षा होती है वैसा प्राप्त नहीं होता है, तो कहते हैं कि हमने ऐसे भी क्या अभद्र कर्म किए जिसकी वजह से हमें ऐसे प्रतिफल की प्राप्ति हुई है । लेकिन जब हम कर्म करते हैं तब उसके परिणाम और निष्कर्ष का विचार नहीं करते। अपने को धनवान्, मशहूर बनाने के लिए अपने विवेक का प्रयोग न करते हुए सही-गलत कर्म करते रहते हैं । किसी भी क्षण प्रारब्ध हमें इस संसार से अलग कर सकता है, इसलिए हमें अपने आप से प्रश्न करना पड़ेगा कि हमने अपने आप के लिए क्या किया? जो भी किया इस संसार में रहने के लिए, भौतिक संसाधनों के भोग के लिए किया । किन्तु उस दूसरे संसार के लिए, जहाँ हमें इस शरीर को छोड़ कर जाना है वहाँ के लिया क्या किया ? अर्थात् कुछ नहीं । बाबा जी कहते थे दुनिया घूमा लेकिन अपने लिए क्या किया ?

शक्तिदाता सद्गुरु ये सोचता है कि हमारे अन्दर जो कुण्डलिनी शक्ति है उसका इस व्यक्ति को किस प्रकार से अनुभव हो

हमें अपने आध्यात्मिक ज्ञान को, ऊर्जा को बढ़ाना होगा तब कहीं जाकर हम अपने लिए कुछ कर पाएंगे और ये हमें इतनी सुलभता से, सरलता से प्राप्त नहीं होगा । वहाँ अपने अहंभाव को, अपने सांसारिक सम्बन्धों को, हमारी इन्द्रियाँ जो कि भौतिक संसार में विचरण कर रही हैं उन्हें अपने वश में करते हुए समर्पण भाव से उस गुरु, उस सन्त की शरण में रहना होगा तब कहीं जाकर हम अपने लिए कुछ कर पाएंगे । हम ये विचार नहीं कर पाते हैं कि कौन से ऐसे कर्म करें जिससे हमारा उद्धार हो ? शक्तिदाता सद्गुरु ये सोचता है कि हमारे अन्दर जो कुण्डलिनी शक्ति है उसका इस व्यक्ति को किस प्रकार से अनुभव हो ? सन्तों की कृपा हम पर चार प्रकार से होती है - दर्शन से, संकल्प से, स्पर्श से और शब्द से । हम उनका दर्शन करें चाहें स्थूलरूप से या सूक्ष्मरूप से परन्तु उनके दर्शन से हमारे जीवन में कुछ हो जाता है । उनके पास हम जाते हैं और वो हमको कुछ शब्द दे देते हैं । विशेष रूप से वो हमें मन्त्रदीक्षा देते हैं तो उस मन्त्रदीक्षा से भी हमारे अन्दर कुछ हो जाता है । अगर वो हमे स्पर्श करते हैं तो उस स्पर्शमात्र से हमारा परिवर्तन सम्भव है । स्पर्श कई प्रकार से होता है और वो उनके सान्निध्य में रहते हो जाता है । संकल्प सबसे ज्यादा सूक्ष्म है । साधु एक जगह स्थिर हो जाता है, स्थिर होकर भगवान् से जुड़कर प्राप्त शक्ति को अपने व संकल्प के माध्यम से उस शक्ति का प्रचार करता है । बहुत से लोग जो बाबा मुक्तानन्द से मिले उनका उन्होंने किसी न किसी प्रकार से दर्शन किया, कुण्डलिनी का अनुभव किया, मन्त्र सुना और ये सब उन्होंने सुना जिनको हमारी संस्कृति का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं

हमारे यहाँ जो आता है जुड़कर अपना प्लग लगा देता है तो स्वभावतः वो प्रवाह उसमें प्रवाहित होने लगता है ।

था । पता नहीं कैसे वो शक्ति, उनको बाबा के सत्संग में, जो कि उनके आस-पास के शहर में होता था वहाँ पहुँचा देती थी और उनका मार्गदर्शन करती थी । फिर उसी के माध्यम से वो लोग इस सिद्ध-मार्ग में सिद्धपुरुष से जुड़ गये । उनकी कार्यप्रणाली का प्रचार करता हूँ तो देखता हूँ कि पूरे विश्व-भर के लोग श्रीगुरुगीता का पाठ, शिवमहिम्नः का पाठ और कुछ लोग दक्षिण भारत की पद्धति से रुद्री का पाठ करते हैं । नमः शिवाय का जप, निरन्तर ध्यान लगाये रखना, किसी न किसी माध्यम से करते रहना हम समझें या न समझें किन्तु वो शक्ति हमारे अन्तर्देह में कार्यरत है । अधिकांश मैं शक्तिपात और कुण्डलिनी की चर्चा नहीं करता हूँ क्योंकि ये हमारी परम्परा की स्वयं होने वाली कला है जैसे गन्ना खाओ और शर्करा खाओ, दोनों ही स्वभाव से मीठे हैं

वैसे ही हमारे यहाँ जो आता है जुड़कर अपना प्लग लगा देता है तो स्वभावतः वो प्रवाह उसमें प्रवाहित होने लगता है । जब हमारी सद्गुरु से भेंट हो जाती है और हमारे अन्दर ज्ञान की ज्योत, जैसे हमारे विद्यालय का ध्येय वाक्य है- प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः, जला देतें हैं, हमारे शरीर में सद्गुरु की जो कृपा है वो हमारे अन्दर पूरे शरीर के कण-कण में व्याप्त होकर प्रवाहित होने लगती है । फिर साधक नित्यप्रति साधना में लगा रहता है, जप करता है, ध्यान करता है और पाठ करता है । सद्गुरु जैसा मार्गदर्शन करते हैं वैसा अपने आप को ढाल लेता है और बाकि सब उस सद्गुरु के प्रति समर्पण भाव पर रहने देता है । उसके बाद हमें उस वस्तु का अनुभव करना है कि हमारे कण-कण में क्या प्रभाव, क्या परिवर्तन आया है ? कुछ लोग अनुभव करके अपने आप को

मनुष्य अपने आप बाहर से सुगन्धित करता है जबकि करना चाहिए अन्दर से क्योंकि अन्दर की सुगन्ध के आगे किसी और सुगन्ध की तुलना नहीं कर सकते ।

भूल जाते हैं फिर अनुभव करते हैं कि ये जो धारा चल रही है कभी भी न रुके । अगर ये तुम अनुभव कर रहे हो, तो जो कृपा है वो आपके कमलरूपी हृदय पर असर कर रही है । और अगर ऐसा नहीं है तो आप अभी भी सांसारिक वस्तुओं से जुड़े हो जिससे कि आपका मन एकाग्र नहीं हो रहा है । इसलिए हमें सत्संग में मन को एकाग्र करके बैठना व सुनना चाहिए क्योंकि पता नहीं कि कौन सी बात सत्संग में अच्छी लग जाये और हम उस पर अमल करने लगें और अपने जीवन को सार्थक बना सकें । मध्य विकासात् चिदानन्दलाभः अर्थात् जब गुरुकृपा हो जाती है, जब कुण्डलिनीशक्ति जागृत हो जाती है और हमारे मध्य में जो सुषुम्ना है उसमें जब शक्ति प्रवाह होने लगती है तो मनुष्य चिदानन्द का अनुभव करता है । अगर आपने अपने जीवन में ये एक क्षण भी अनुभव किया है तो आप उसको कभी भूल नहीं पाओगे क्योंकि उस अनुभव के साथ किसी की भी तुलना नहीं कर सकते । मनुष्य अपने आप को बाहर से सुगन्धित करता है जबकि करना चाहिए अन्दर से क्योंकि अन्दर की सुगन्ध के आगे किसी और सुगन्ध की तुलना नहीं कर सकते । हमें अपने गुरु के प्रति समर्पण भाव रखते हुए उनके द्वारा कथित मार्ग पर उसी तरह चलना है जैसे कि रेलगाड़ी के डिब्बे ठीक उसी तरह चलते हैं जैसा कि इंजन चलता है या चल रहा है । वैसे ही सद्गुरु को इंजन और अपने आपको डिब्बा मानते हुए उनके मार्ग पर चलना चाहिए । जैसा कि हमारे यहाँ कहा गया है- संगच्छध्वं संवदध्वम्, कि साथ चलें, साथ जायें, साथ बोलें । जीवन संगीतमय हो, खुशीमय हो, आनन्दमय हो, प्रेममय हो ऐसी प्रार्थना करते हुए अपना

जीवन संगीतमय हो, खुशीमय हो, आनन्दमय हो, प्रेममय हो ऐसी प्रार्थना करते हुए अपना जीवन व्यतीत करें।

जीवन व्यतीत करें। अब प्रेम को साथ लेकर चलना बहुत बड़ी बात है क्योंकि प्रेम विश्वास की नींव पर पलता और बड़ा होता है। यही कारण है जब मनुष्य विश्वास के प्रतिकूल हो जाता है तो आपसी प्रेम सम्बन्धों में दरार आ जाती है क्योंकि मनुष्य भी संवेदनशील प्राणियों की श्रेणी में आता है और अपने आप को सहज रखने के लिए प्रेम का सहारा लेता है। अब ऐसे में अगर कोई उनकी भावनाओं को छूकर उनमें प्रेम रूपी दीप जलाता है तो उसका एक ही कारण है विश्वासरूपी प्रेम जिसके बलपर वह हर प्राणी को जीत सकता है। हालाँकि बाबा जी के साथ इसी तरह का सम्बन्ध रहा और उनके पास दीर्घदण्डं नमस्कृत्य निर्लज्जो गुरुसन्निधौ इस भावना से निवास किया, अन्तरंग में जो अनुभव हुए हर क्षण में वो अनुभव एक जैसे रहे। शास्त्र कहता है कि हमारा अक्सर समय गुरु के सन्निध्य में बीते, उनकी प्रत्येक बात में एक उपदेश होता है और हर अपने कृत्यों से कुछ न कुछ सीख देते हैं जो हमारे जीवन के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण और अनुभवी होते हैं। एक बार आचार्य झा जी ने बताया था जैसा कि गुरुगीता में आता है गुरोरोच्छिष्टभोजनम् उन्होंने बहुत ही अच्छी बात बतायी थी कि हमेशा ही हम गुरु के शारीरिक सान्निध्य में हों उनका खाया हुआ भोजन प्राप्त हो ऐसा तो संभव नहीं, तो फिर हमें क्या करना चाहिए? उसके लिए जैसे आश्रम में बड़े बाबा जी को भोग लगाते हैं, जो भोग लगाता है उसकी क्या भावना रहती है और जो भोग लाता है उस का वही जाने। हमारे छात्र जो भोग लगाते हैं वो उनका कर्म है इसलिए लगाते हैं या बारी से लगाते वो ही

हमारे अन्तरंग में ये निरन्तर चिन्तन चलते रहना चाहिए कि जिसको हम आहुति दे रहें हैं वो विराजमान हैं और हमारे द्वारा प्रदत्त भोजन को ग्रहण कर रहे हैं ।

जाने । मेरा कहना यही है सबसे कि हमें नहीं पता रहता है, आँखों से नहीं दिखता है कि जिसको हम प्राणाय स्वाहा और अपानाय स्वाहा द्वारा आहुति दे रहे हैं वो विराजमान है कि नहीं, किन्तु हमारे अन्तरंग में ये निरन्तर चिन्तन चलते रहना चाहिए कि जिसको हम आहुति दे रहें हैं वो विराजमान हैं और हमारे द्वारा प्रदत्त भोजन को ग्रहण कर रहे हैं । तब कहीं जाकर हम जिस हेतु से भोजन अर्पित कर रहें हैं वो कार्य सफल हो पाएगा । कुछ आश्रमों में देखता हूँ कि वहाँ के छात्र भोग लगने से पहले ही खुद का भोग लगा लेते हैं और ऐसा भाव रखते हुए ये कर्म करते हैं कि ये साधु और महामण्डलेश्वर हैं सब खाकर आये होंगे तो अब यहीं जाकर हम अपनी संस्कृति और संस्कार को खो बैठतें हैं और इन्द्रियों के चक्कर में आदर्श को जीवित नहीं रख पाते हैं तथा अपने कार्य में सफल नहीं होते । और भी कई प्रकार की मानसिकता बना लेतें हैं कि क्या है गुरु के पास ? क्या मिला गुरु जनों से ? परन्तु हमने उस गुरु के प्रति क्या मान-सम्मान आदर प्रदर्शित किया इस बात पर हमें अपने आप से प्रश्न करना पड़ेगा । और मैं आशा यही रखता हूँ कि हमारे छात्र जब ऐसे माहौल में जायें तो एक आदर्श का चिह्न बने और वैसे न बनें । अपने आदर्श को पकड़कर रखें भले ही वो जीवाणुरूपी हमारे मन को ठेस पहुँचायेगा किन्तु हमें अपने मार्ग का त्याग नहीं करना है । उसके लिए मैं बार-बार यही दोहराता हूँ कि इसके लिए हमें कितना विवेकी और बुद्धिमान बनना पड़ेगा कि ये सब स्मरण रखें और समर्पण भाव से जियें ।

सद्गुरुनाथ महाराज की जय